

## औपनिवेशिक भारत में नागरिक शास्त्र और नागरिकता

मनीष जैन

### लेखक परिचय :

‘19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से नागरिकशास्त्र की पाठ्यचर्या और नागरिक का विचार’ पर शोध प्रबंध, 10 वर्ष तक शिक्षण कार्य, एससीईआरटी, दिल्ली के साथ कक्षा 6-8 पाठ्यपुस्तक निर्माण में भागीदारी।

**संप्रति :** दिल्ली स्थित स्वयं सेवी संगठन एन.ई.जी. - एफ.आई.आर.ई. में शोध समन्वयक।

### सम्पर्क :

डी-27 ए, ज्योति नगर पश्चिम,  
लॉनी रोड, शाहदरा, दिल्ली - 110094

औपनिवेशिक काल में भारतीय मानस में एक द्वंद्व की स्थिति थी। एक ओर वह भारत के बारे में खोजों से अभिभूत था तो दूसरी ओर वह अंग्रेजी शासन व्यवस्था के इहलौकिक तर्क से सहमति दर्ज कर रहा था। ऐसे में औपनिवेशिक शासन ने भारतीय मानस की इस कमजोरी को पकड़ा और भारतीय मानस पर अपनी पकड़ को व्यवस्था के माध्यम से मजबूत करने का प्रयास किया। जाहिर है कि व्यवस्था पर उनकी पकड़ शिक्षा के माध्यम से ज्यादा बेहतर तरीके से हो सकती थी। और यही उन्होंने किया भी। ये लेख औपनिवेशिक काल के दौरान शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से, खासतौर पर नागरिक शास्त्र, धीरे-धीरे किए जा रहे परिवर्तनों को पकड़ने का प्रयास करता है।

**दक्षिण** एशिया में लगभग सभी देश औपनिवेशिक अनुभव से गुजरे हैं। लेकिन, जैसा कि पार्थ चटर्जी हमें याद दिलाते हैं, “हम औपनिवेशिक काल के बारे में कुछ इस तरह सोचते हैं जैसे हम उसे पीछे छोड़ आए हों, जबकि आधुनिकता की प्रगति एक ऐसी परियोजना है जिसमें हम सभी, यद्यपि उत्साह की अलग-अलग मात्रा में, अभी भी गहरे रूप से उलझे हैं” (चटर्जी 1994 : 14)। दिलचस्प बात यह है कि औपनिवेशिक परियोजना सिर्फ एक आर्थिक और राजनैतिक ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक परियोजना भी थी। यह तर्क न केवल विभिन्न उत्तर-औपनिवेशिक सिद्धांतवादियों ने दिया है बल्कि यह बिन्दु भारत में राज के प्रलापों में निरंतर विद्यमान था।

अपने उपनिवेशों, उसके मूल निवासियों और उनकी सामाजिक दुनिया को समझने के लिए, औपनिवेशिक शासकों ने विभिन्न प्रकार का ज्ञान पैदा किया ताकि वे भारत को बेहतर तरीके से प्रशासनित एवं नियंत्रित कर सकें। इस प्रक्रिया में, भारत और भारतीय सोचने के ब्रिटिश तरीकों और उन शब्दावलियों में परिभाषित, व्याख्यायित, वर्गीकृत, श्रेणीबद्ध एवं व्यवस्थित किए गए जो औपनिवेशिक शासकों के अनुकूल हों। इस तरह, औपनिवेशिक ज्ञान, औपनिवेशिक विजय का केवल एक परिणाम नहीं रहा बल्कि औपनिवेशिक विजय की ओर ले गया और औपनिवेशिक शक्ति का एक पहलू बन गया<sup>2</sup>।

रोनाल्ड इन्डन का मानना है कि भारतीय समाज के बारे में ब्रिटिश औपनिवेशिक ज्ञान की जड़ें इस अवधारणा में निहित थीं कि सभी इंसानी प्रयत्नों का मूल तत्व पश्चिम में - उसकी तार्किक और प्रगतिशील संस्थाओं, उसकी वैज्ञानिक सोच, उदारवादी लोकतंत्र और पूंजीवाद - पाया जा चुका था (इन्डन 1986 : 402)। इस तर्कानुसार भारतीय सभ्यता का मूल तत्व पश्चिम के बिल्कुल उल्टा था और उपनिवेशवाद ने विलोम युग्मों को जन्म दिया - वयस्क/अवयस्क, सभ्य/बर्बर, वैज्ञानिक/अंधविश्वासी, विकसित/विकासशील, प्रगतिशील/आदिम (गांधी 1999 : 32)। इन छवियों ने औपनिवेशिकों के दिमाग को गुलाम बनाने, उनकी स्व-अवधारणा और उनकी सांस्कृतिक प्राथमिकताओं को बदलने में मदद की। औपनिवेशिक शासकों ने कोशिश

की कि औपनिवेशित खुद को एक सक्षम व्यक्ति के रूप में न देखकर एक ऐसे व्यक्ति में बदल जाएं जो केवल दूसरों की सक्षमता में विश्वास रखता है (कॉर्नर 1974 : 26-27, च्नुगी 1994 : 65)। औपनिवेशितों ने औपनिवेशिकों से घृणा की और साथ ही शिदत से उन्हें सराहा (मेम्मी 1968 : 45)। उन्होंने औपनिवेशिकों की दुनिया को पाने और उसके स्वामित्व की इच्छा की। इस प्रक्रिया में, यूरोप के शासकीय वर्गों के मूल्य सार्वभौमिक महत्त्व के मूल्यों के रूप में स्थापित हुए।

औपनिवेशितों की विश्व दृष्टि को नियंत्रित करने की योजना औपनिवेशिक भारत के मध्यम वर्ग के साथ बेहद सफल रही। औपनिवेशिक शासन ने कुछ समूहों की सहमति पाने की कोशिश की जबकि अन्य को नागरिक समाज से बहिष्कृत किया। एक ऐसा देशज वर्ग पैदा हुआ जिसने साम्राज्यवादी संस्कृति और मूल्यों को आत्मसात कर लिया था।

इस अभिजन को पैदा करने में शिक्षा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उपनिवेशवाद की सांस्कृतिक परियोजना के तौर पर, शिक्षा ने भारतीयों के नैतिक सुधार का उद्देश्य रखा<sup>9</sup>। इसने ब्रिटिश शासन के प्रति आज्ञाकारिता भरा रवैया पैदा करने, देशज भारतीय को नागरिक में बदलने और भारत में नागरिक समाज विकसित करने की कोशिश की (कुमार 1991 : 24-26)।

यह आलेख औपनिवेशिक भारत में एक ज्ञान शाखा के रूप में नागरिक शास्त्र के पनपने और नागरिकता के विचार की ऐतिहासिक जांच-पड़ताल करता है। इस उद्देश्य के लिए औपनिवेशिक नागरिक शास्त्र के प्रतिनिधि के तौर पर भारत के स्कूलों में पढ़ाई गई ली वॉर्नर कृत नागरिक शास्त्र की पहली पाठ्यपुस्तक, 'भारत का नागरिक' का विश्लेषण किया गया है। नागरिक शास्त्र और नागरिक के विचार की अभिव्यक्ति को समझने और मूल्यांकन के लिए ऐतिहासिक तथ्यों को आधार बनाया गया है। यह लेख दिखाता है कि किस तरह नागरिक शास्त्र अंतरंग रूप से शासन, सांस्कृतिक समावेश और ब्रिटिश प्राधान्य को स्थापित करने की परियोजना से जुड़ा था।

## ऐतिहासिक संदर्भ

उपनिवेशवाद ने ज्ञान की लगभग हर शाखा पर अपनी छाप छोड़ी। असल में, आधुनिक ज्ञान व्यवस्थाओं के विकास और अधिकतर अनुशासनों के इतिहासों को औपनिवेशिक विमर्शों में गुंथे हुए और उसके द्वारा आकार देते देखा जा सकता है<sup>4</sup>। यह कुछ विचारधारा के काम जैसा था, एक साथ वास्तविकता का गलत प्रतिनिधित्व और उसकी पुनर्रचना एवं पुनर्व्यवस्था। विचारधारा की तरह, वह 'भौतिक परिस्थितियों' से पैदा हुआ और अपने असर में

भी 'भौतिक' था। मैं इस अवधारणात्मक समझ एवं कई अन्य अध्ययनों की पृष्ठभूमि में, औपनिवेशिक भारत में नागरिक शास्त्र की ओर जा रहा हूँ।

सन् 1877 में, पाठ्यपुस्तक कमेटी ने प्रस्ताव रखा कि 'अच्छे नागरिकों के कर्तव्यों और नैतिकता तथा विवेक के सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य सिद्धांतों' की एक सरल रूपरेखा 'प्राथमिक शिक्षा में देशी भाषा की प्रत्येक शृंखला' में शामिल की जाए (भारतीय शिक्षा कमीशन 1882 : 339-40)। लेकिन भारतीय शिक्षा कमीशन की रपट इस बात की गवाह है कि निम्न प्राथमिक, उच्च प्राथमिक एवं मिडिल स्कूल स्तर पर पढ़ाए जाने वाले विभिन्न विषयों जैसे अंग्रेजी साहित्य अध्ययन, देशी भाषाओं, इतिहास, भूगोल, गणित और कनिंघम के सफाई/स्वास्थ्य प्रवेशिकाओं की लम्बी सूची से नागरिक शास्त्र नदारद था (भारतीय शिक्षा कमीशन 1882 : 121-25)।

सन् 1881 तक ब्रिटिश शासन के प्रति भारतीय शिक्षितों का असंतोष नजर आने लगा था। क्रिश्चियन वर्नाक्यूलर एज्यूकेशन सोसाइटी के भारतीय एजेंट जॉन मरडॉक ने इंडियन बैनर, अमृत बाजार पत्रिका जैसे समाचार पत्रों को उद्धृत कर यह दिखाने की कोशिश की कि भारतीयों का तथाकथित आत्म अहंकार, रूखापन, गैरवफादारी, संशयवादी और अनैतिकता अंग्रेजी शिक्षा का परिणाम थी (मरडॉक 1881 : 10-11)। 'भारत की वर्तमान संक्रमण अवस्था में', मरडॉक ने जोर देकर कहा था, 'यह बेहद महत्वपूर्ण है कि सत्ता के प्रति आदर पैदा किया जाए' (वही : 13)। मरडॉक के लिए, वफादारी 'अच्छी सरकार की पहली आवश्यकता थी' और वफादारी पैदा करने के साधनों में विद्यालयों में यह पढ़ाना शामिल था कि इंग्लैण्ड ने भारत के लिए क्या किया है; यह दिखाना 'कि हमारी कमियों के बावजूद, हम (ब्रिटिश) भारत के लिए एक वरदान रहे हैं; एक स्थापित सरकार के फायदे' बताना और प्रत्यक्ष रूप से 'राजा का सम्मान' करने की कर्तव्य भावना पैदा करना (वही : 103-105)। क्योंकि लोगों के दिमागों में भारत में ब्रिटिश सरकार के खिलाफ 'जहर भरना', 'बेहद हानिकारक' था, इसलिए यह अनिवार्य हो गया कि 'गलतफहमियों/भ्रांतियों को दूर करने के लिए पाठ का प्रयोग किया जाए' (मरडॉक 1900 : 32)।

मरडॉक ने सन् 1900 में अपने पाठकों को यह भी बताया कि 'नागरिक पाठमालाएं', 'इंग्लैण्ड में भी तुलनात्मक रूप से हाल में ही उपजी थीं' और ली वॉर्नर की 1897 में छपी पुस्तक, भारत का नागरिक, भारत की नागरिक शास्त्र की पहली पाठ्यपुस्तक थी। यह तब काफी लोकप्रिय हुई जब लॉर्ड रिपन ने इसके प्रयोग की सिफारिश की और जल्दी ही 1899 में इसका अगला संस्करण छपा (मरडॉक 1900 : 33)।

इस पृष्ठभूमि के साथ हम ली वॉर्नर की पुस्तक की प्रस्तावना पढ़ सकते हैं और उसके प्रयास की एक व्याख्या पा सकते हैं : 'हमारे भविष्य के नागरिकों को उनके अधिकारों और कर्तव्यों का क, ख, ग सिखाने की एक कोशिश करने की आवश्यकता है। मैं कौन हूँ और मेरे पड़ोसी कौन हैं ? मुझ पर किस तरह शासन किया जाता है और मुझसे क्या अपेक्षाएँ हैं ? मेरे द्वारा दिए गए कर्तव्यों का क्या होता है ? मुझे और मेरी संपत्ति को सुरक्षित रखने और मुझे बीमारी तथा अकाल से बचाने के लिए क्या किया जाता है ? (ली-वॉर्नर 1899 : viii)। इस अनुच्छेद में हमें नागरिक शास्त्र की विषय-वस्तु की भी एक रूपरेखा मिलती है - पाठकों, भविष्य के नागरिकों को राज्य की संस्थाओं, उनकी संरचना और शक्तियों से परिचित कराना और अच्छे नागरिकों की/से अपेक्षाओं, आदतों, गतिविधियों और आत्मा के आदर्श स्थापित करना।

ली वॉर्नर नागरिक का रेखाचित्र देशज निवासी की कमियों की ओर इशारा कर रचता है। भारतीय अपने धर्म, जीवन के तरीके, जाति या पंथ के आधार बंटे थे। प्रत्येक विद्यालय जाने वाले लड़के/विद्यार्थी को यह समझने की आवश्यकता थी कि 'वे बंधन जो लोगों को किसी भी देश के नागरिकों के तौर पर बांधते हैं, इसलिए नहीं कि टूटने चाहिए क्योंकि वे अलग-अलग धर्म को मानते हैं या जीवन के विभिन्न तरीकों को अपनाते हैं' (ली वॉर्नर 1899 : 1)। वह दानशीलता को अपनी जाति या पंथ तक सीमित रखने के लिए देशज निवासियों की आलोचना करता है और इस बात पर बल देता है कि नागरिकों के 'कर्तव्यों और विशेषाधिकारों का फैलाव, किसी भी वर्ग या सामुदायिक पंथ से कहीं ज्यादा विस्तृत है (वही : 3)। यह याद रखने के लिए कि अपने परिवार, पंथ या गांव के प्रति कर्तव्यों के अतिरिक्त, उनका 'पूरे देश के प्रति भी कुछ दायित्व है' भारतीयों को 'पूर्वाग्रहों से मुक्त' होने की आवश्यकता थी (वही : 4)। उन्हें अपने 'स्वार्थ' के अनुरूप 'नौकरी और लाभ की खोज में जहाँ चाहें वहाँ जाने' की जरूरत थी और अच्छा होता कि उनमें 'प्रतियोगिता की भावना' होती (वही : 12)। यह सब 'उनके श्रम को प्रोत्साहित करता या उन्हें अपनी स्थिति सुधारने के लिए उकसाता' (वही : 8)। ली वॉर्नर के अनुसार 'अनुभव' ने यह 'सिद्ध' किया था कि वह 'सरकार बुद्धिमान नहीं होती जो ऐसे कानून या नियम बनाती है जो उद्योग और व्यापार की निर्बाध स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करें'। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को यह पता था कि 'किस प्रकार का श्रम उसे रास आता है', यह तार्किक था कि 'काम के चयन में उसे अपने स्वार्थ के अनुरूप निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाए'। सरकार से केवल यह अपेक्षा थी कि वह यह देखे कि 'श्रमिकों के मालिक अपने कर्मचारियों के जीवन या शारीरिक अंगों को खतरे में

न डालें'। सरकार को 'शांति और न्याय को बनाए रखने' की भूमिका निभानी थी और फिर 'पूँजी स्वयं श्रम करने की अंतःप्रेरणा दे सकती थी' (वही : 107)।

हालांकि ब्रिटिश ने 'नागरिक अव्यवस्था' का अंत किया था, उनकी सेना 'भारत की लम्बी सीमा की सुरक्षा करने में सक्षम थीं (वही : 125) और ब्रिटिश नौसेना भारत के तटों की रक्षा कर रही थी (वही : 121), तब भी अच्छी सरकार को सुचारू रूप से चलाने के लिए ली वॉर्नर को नागरिकों का सक्रिय सहयोग आवश्यक लगा (वही : 14)। किसी देश द्वारा अपनी आंतरिक सुरक्षा के लिए इस्तेमाल की जाने वाली शक्तियों में सबसे अधिक सशक्त लोगों का 'बेहतर विवेक और सहयोग' था (वही : 129)। अगर लोग 'उपद्रव/उग्र' हों या उनके पड़ोसी 'कुशासित या बर्बर जनजातियाँ' हों तो यह 'उपद्रवी/उत्पाती वर्ग' जिलाधिकारी का ध्यान बंटते थे और 'पुलिस व्यवस्थाओं में उसका अधिक ध्यान और समय उलझता है' (वही : 36)। ऐसे में, यह अंतर्निहित है कि वह जिले के विकास की ओर अपनी आवश्यक ऊर्जा नहीं लगा पाएगा जो अंततः देशज भारतीयों के हितों के ही खिलाफ जाता था। अगर 'पुलिस के भ्रष्टाचार की, न्याय के विफल होने या रोकी जा सकने वाले रोग के फैलने की शिकायतें' थीं, तो वे भी देशजों द्वारा रिश्वत देने, झूठी गवाहियों और आवश्यक सावधानियाँ न बरतने की कमियों का परिणाम थीं (वही : 14)। इसके बजाय जो जरूरी था, वह था नागरिकों द्वारा मदद। ली वॉर्नर ने सुझाया कि नागरिक पुलिस को रिश्वत द्वारा ललचाना रोककर और उनके द्वारा अपनी जिम्मेदारियों की अवहेलना की शिकायतें उनके उच्च अधिकारियों को करके, पुलिस की कार्य कुशलता सुधारने में मदद कर सकते थे (वही : 130)।

नागरिकों से/के अपेक्षित गुणों और राज्य की भूमिका पर चर्चा के लिए इस्तेमाल की गई शब्दावली को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है अगर उसकी वैचारिक जड़ें उदरवाद के सामाजिक दर्शन में खोजी जाएं और उसे भारत में नागरिक समाज रचने और औपनिवेशिक शासन को बनाए रखने के औपनिवेशिक कामों से जोड़ा जाए।

भारत में नागरिक समाज बनाने की आवश्यकता सन् 1813 तक पैदा हो गई थी जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अनेक देशी भारतीय राज्यों को जीत लिया था और ब्रिटिश पूँजीपतियों ने भारत से व्यापार पर कम्पनी के एकाधिकार के अंत की मांग की थी। 'स्वतंत्र व्यापार' और अहस्तक्षेप (लेसज-फेयर) विचारधारा (ब्रिटिश मध्यमवर्ग की) ने उन संस्थाओं को रचने की मांग की जो उसके स्वयं के समाज की परिचायक थीं - निजी पूँजी, कानून का शासन, व्यक्ति की स्वतंत्रता और पश्चिमी ज्ञान की शिक्षा। इस उद्देश्य के लिए नई

व्यवस्था के उन मूल्य-मानकों, नियमों और चिन्हों को गढ़ा जाना था जो व्यावसायिक उद्यम में बाधा न बनें। सन् 1811 में लॉर्ड मिंटो (गिल्बर्ट इलियर) द्वारा लिखे गए नोट के अनुसार शिक्षा की भूमिका देशज भारतीयों को नई व्यवस्था में समाजीकृत करने और हिंसा को न्यूनतम करने की थी।

सत्रहवीं शताब्दी से, उदारवाद का व्यक्ति स्वामी व्यक्ति (पोसेसिव इंडिविजुअल) है (मैक्फरसन : 1977)। वह स्वयं अपने जीवन का स्वामी है जो किसी - ईश्वर, समाज या राज्य - का नहीं है। भौतिक संपत्ति का मालिकाना स्वयं के स्वामित्व का विस्तार है। इस संदर्भ में, किसी व्यक्ति के 'कल्याण' का अर्थ उदारवादी शब्दावली में उसकी स्वयं और संपत्ति की सुरक्षा है। उदारवादी दर्शन में राज्य की उत्पत्ति 'जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति' की सुरक्षा के आश्वासन के लिए हुई थी। संपत्ति का स्वामित्व उदारवादी चिन्तन की एक प्रमुख अवधारणा थी। अतः औपनिवेशिक राज्य ने भारत में नागरिक समाज को विकसित करने के लिए निजी संपत्ति को रचा था। ली वॉर्नर ने प्रश्न 'मुझे और भूमि में मेरी संपत्ति को सुरक्षित रखने के लिए क्या किया गया है...?' के पीछे यही दर्शन था। 'मैं' और 'संपत्ति' दोनों स्वयं थे और औपनिवेशिक राज्य दोनों की सुरक्षा कर अपने होने का औचित्य बता रहा था। ली वॉर्नर जिस नागरिक की बात कर रहा था, वह था जिसके पास संपत्ति का मालिकाना था - अपने श्रम और भौतिक रूपों की संपत्ति। उदारवादी दर्शन में, राज्य को आर्थिक मसलों को आर्थिक नियमों जैसे मांग और आपूर्ति, प्रतियोगिता और बाजार व्यवस्था के नियमों के नियंत्रण में छोड़ना था, लेकिन एक औपनिवेशिक राज्य के बतौर, ब्रिटिश शासकों ने औपनिवेशिक भारत में इन आदर्शों के संचालन के साथ छेड़छाड़ की।

किसी व्यक्ति को निजी हित के अनुसार चलना चाहिए, यह उदारवादी व्यक्तिवाद की केंद्रीय विषय-वस्तु था। इसने मानवीय विविधता के प्राकृतिक और सही होने की कल्पना की। इसने व्यक्ति को प्राथमिक इंसानी समाज या उसकी संस्थाओं से कहीं अधिक सच या मूलभूत माना। परंपरा की शक्ति के सामने झुकने के बजाय प्रत्येक व्यक्ति को अपने अनुभवों में विश्वास होना चाहिए था और अपनी तार्किक शक्तियों में भरोसा (अरब्लास्टर 1987 : 14-25)। ब्रिटिश दृष्टि में भारतीय देशज विश्वास और परंपरा पर अधिक विश्वास करते थे और अतार्किक थे<sup>6</sup>। इसलिए ली वॉर्नर की पुस्तक में निजी हित की गणना में तर्क का इस्तेमाल करना और उसके अनुसार स्वयं को निर्देशित करना, देशज की नागरिक के रूप में नई पहचान का एक चिन्ह एवं लक्षण बन गया। तर्क भारतीयों को नियंत्रित भी कर सकता था जो औपनिवेशिक रूढ़िबद्ध धारणाओं

के अनुसार भावुक थे और 'भाववेशों' द्वारा नियंत्रित होते थे।

भारतीय शासक जिस नागरिक समाज को आदर्श मानते थे और अंग्रेजों ने जिसका भारत में उद्घाटन किया था, 'तार्किक व्यवहार या तर्क के इस्तेमाल का अर्थ था संपत्ति की सुरक्षा के अपने सरोकार को राज्य द्वारा व्यवस्था स्थापित करने की कोशिशों को मजबूत करने की इच्छा में तब्दील करना' (कुमार 1991 : 29)। इसीलिए ली वॉर्नर इस बात पर जोर दे रहे थे कि नागरिकों को निश्चित तौर पर सरकार की 'व्यवस्था' बनाए रखने में 'मदद' करनी चाहिए। राज्य के साथ सहयोग का अर्थ था कानूनों का आदर करना और नियमों का पालन करना। औपनिवेशिक शासकों की दृष्टि में व्यवस्था का विचार केंद्रीय था। इसका अर्थ था संपत्ति और संपत्तिवानों तथा औपनिवेशिक शासन की सुरक्षा। इस तर्क के अनुसार, वे किसान और आदिवासी जिन्होंने शोषक जमींदारों और साहूकारों पर हमले किए या अंग्रेजों का विरोध किया<sup>6</sup>, वे 'उत्पाती/उपद्रवी', 'उपद्रवी वर्ग' कहलाए जिन्होंने 'अराजकता' और 'अव्यवस्था' को जन्म दिया और जिनसे अंग्रेजों ने 'लड़ाई की' 'हराया' और 'दंड दिया'। इस तर्क की तार्किक परिणिति के अनुसार, नागरिक से औपनिवेशिक राज्य और निजी संपत्ति की संस्था के प्रति ऐसी किसी धमकी भरी गतिविधि में भाग लेने की अपेक्षा नहीं थी।

'निजी हित', 'प्रतियोगिता', 'श्रम एवं पूंजी की स्वतंत्रता', निजी संपत्ति की सुरक्षा राज्य के औचित्य को बयान करते ऐसे उदारवादी मूल्य थे जिनका मूल अंग्रेजी और पश्चिमी समाजों में पूंजीवाद के विकास के ऐतिहासिक अनुभव में थे। इन्होंने सामंतवादी व्यवस्था के खिलाफ उभरते बुर्जुआ (मध्यमवर्ग) की लड़ाई को दिशा दी थी। सभ्यता के 'ऐतिहासिक' सिद्धांत के अनुसार, क्योंकि अंग्रेजी और पश्चिमी समाज में प्रगति की ऐतिहासिक प्रक्रिया पूरी कर ली गई थी, इसलिए उपनिवेश में उस प्रक्रिया और उसके मूल्यों को सिर्फ दोहराना भर था। ली वॉर्नर की किताब यूरोपीय शासक वर्ग के मूल्यों को सार्वभौमिक महत्त्व के मूल्यों के तौर पर स्थापित करने की इस परियोजना में मदद कर रही थी और इसके लिए उन मूल्यों को देशज समूह की नागरिकों में बदली पहचान और नए बने नागरिक समाज के चिन्हों के तौर पर व्याख्यायित कर रही थी।

औपनिवेशिक शब्दावली में परिवर्तन/रूपांतर एक प्रमुख शब्द था। 19वीं शताब्दी से उसने साम्राज्य के विचार का तर्क और औचित्य दिया या (वीनर 1981 : 32-33)<sup>7</sup>। टाइम्स के संपादक विलियम स्टीड ने इस विचार को बिना किसी संशय के इन शब्दों में रखा था, 'अंग्रेजी भाषी नस्ल मानवता की स्थिति में भावी सुधार को लाने के लिए ईश्वर द्वारा चुने गए प्रतिनिधि कर्ताओं में से एक

है (चक्रवर्ती में उद्धृत 1991 : 7)। अंग्रेज अफसरों ने स्वयं को इस परिवर्तन को लाने वाले अग्रदूत के रूप में देखा। परिवर्तन के इन कर्ताओं के प्रति देशजों से किस प्रकार की प्रतिक्रिया की अपेक्षा थी ? बंगाल के उप-राज्यपाल सर चार्ल्स इलियट ने इन शब्दों में अपनी अपेक्षाएं बयान कीं, “भारत के देशजों का दिमाग नौकराना नहीं है : वह सच्चे नायक की पूजा कर सकता है जब उसे पता चले (इलियट 1892 : 10)। लॉर्ड मिंटो ने सन् 1811 में कहा था कि ‘अज्ञानता’ की वजह से देशज ‘उनकी बेहतर सरकार के लिए उठाए गए कदमों में बाधा डालते थे’ (बासु में उद्धृत 1952 : 145)। सन् 1888 में जॉन स्ट्रैची ने भी ‘अज्ञानता’ को अधिराज्य के लिए ‘सबसे बड़े खतरे’ के तौर पर पहचाना था जो ‘अतार्किक डर’ को जंगल की आग की तरह फैला सकता था। ‘इस अज्ञानता और इसके परिणामों’ के विरुद्ध लोगों का बढ़ा ज्ञान ही एकमात्र रक्षाकवच था, (स्ट्रैची : 1886 : 139)। ऐसे में यह स्वाभाविक था कि अनेकों पुस्तकों का अंतिम अध्याय अनिवार्य रूप से ‘ब्रिटिश शासन के लाभ’ हो (वॉल्श 1983 : 7)। ली वॉर्नर की किताब इस नियम का अपवाद नहीं थी।

ली वॉर्नर ने नोट किया कि राज देशजों के लिए संरक्षण और सुरक्षा लाया था। अब गांवों को ‘चोरों द्वारा घर पर हमले या आक्रमणकारी सेना द्वारा घर बरबाद करने’ का डर नहीं सताता था। ग्रामीण सड़कों या रेलवे से अपने व्यापार-कामकाज के लिए सुरक्षित यात्रा कर सकते थे (ली वॉर्नर 1899 : 12)। इन स्थितियों में व्यापार फल-फूल सकता था (वही : 17)। अब गांव पानी के एक स्रोत के तौर पर कुएं पर निर्भर नहीं थे। ब्रिटिश सरकार ने नहर विकसित की थीं (वही : 12)। ‘विदेशी पूंजी की मदद से भारतीय मजदूरों के लिए’ सूत, चाय, कॉफी, नील, जूट, लोहे, कोयले, कागज और रेशम के उद्योग खोले गए थे (वही : 108)। तो इस तरह हमारे पास एक औपनिवेशिक सरकार थी जो अपनी औपनिवेशित प्रजा की चिन्ता करती थी! वह देशज राजाओं की तरह गैर-जिम्मेदार नहीं थी जो विदेशी आक्रमण के समय केवल ‘राजधानी शहर की सुरक्षा’ को लेकर चिन्तित थे और ‘गांवों को उनके भाग्य के भरोसे’ छोड़ देते थे। ली वॉर्नर ने यह भी कहा कि औपनिवेशिक शासन देशज शासकों से इस मायने में भी अलग था कि करों से प्राप्त पैसे का शहरों को सजाने में दुरुपयोग करने के बजाय उसने ‘जिला नहरों, सड़कों या स्थानीय उपयोग के लिए आवश्यक सार्वजनिक कामों’ में यह पैसा खर्च किया (वही : 9)।

यह राज द्वारा अपनी नैतिक जिम्मेदारी निभाने, विजित क्षेत्र को सुधारने और विकसित करने के ‘श्वेत बोझ’ की व्याख्या थी। यह छवि मॉड डाइवर की परम्परा में थी जिसके अनुसार राज एक विदेशी और बर्बर देश में सभ्यता के विस्तार के लिए किए गए

बलिदानों, समर्पण और दृढ़ता के मूर्त रूप लेने की एक गाथा थी (चक्रवर्ती 1991 : 27)। ‘शांत, रूखे, चिड़चिड़े लोगों’ द्वारा राज को उसके किए सभी कामों और बकाया के आधार पर मूल्यांकित किया जाना था (किपलिंग 1899 : 290-291)। क्या ऐसे में यह स्वाभाविक नहीं था कि लोग एक ऐसे उपकारी शासन को जो अपनी जिम्मेदारी निभाता था, दिलो-जान से समर्थन दें और उसके प्रति ‘वफादार’ हों ? औपनिवेशिक शासन की सुरक्षा के लिए वफादारी की यह आवश्यकता भारतीयों के अविश्वसनीय, बहानेबाज, धोखेबाज और छल-कपट से भरे होने की औपनिवेशिक छवियों से अंतरंग रूप से जुड़ी थी\*। अंग्रेज नौकरशाह के लिए वफादारी की कसौटी ‘अच्छे को बुरे... से अलग करती थी’ (तलवार 1984 : xvii)। ली वॉर्नर की पुस्तक औपनिवेशितों में यह मूल्य पैदा करने और उन्हें ‘राजनैतिक रूप से स्वच्छ’ बनाने के काम में लगी हुई थी।

ली वॉर्नर की नागरिकशास्त्र की पाठ्यपुस्तक भारतीयों के एक और रूप में नैतिक उत्थान का औजार थी यानी स्वच्छता के प्रति एक नया अनुशासन विकसित करना। विक्टोरियाई इंग्लैण्ड में, एड्विन चाड्विक के स्वच्छता अभियान के बाद, भारत की बीमारियां और गंदगी भी इंग्लैण्ड से उसकी निरंतर भिन्नता की निशानी बन गए थे। भारत की स्वच्छता संबंधी कमियां एवं त्रुटियां जैसे भारतीय देशज की ‘समूचे पड़ोस को गंदगी से भर देने’ की आदत, ‘गंदे नाले’, ‘रुके पानी की हौदियां’ भारत को ‘गंदगी और अतिभोगी भूस्थलों, अनियंत्रित देहों’ से भरे देश की विशिष्टता देते थे (तलवार 1984 : 96-144)। एक भारतीय प्रशासनिक सेवाधिकारी एफ.एल.ब्राउन ने दावा किया था कि ‘मलत्याग की नित्यचर्या नागरिकता के मूल तक जाती थी। अगर वह एक दैनिक अनुशासन भी हो तो अच्छी नागरिकता की नींव रख दी गई थी’ (तलवार में उद्धृत 1984 : 96)। ली वॉर्नर द्वारा लिखित ‘भारत का नागरिक’ ने नालियों की सही व्यवस्था, नहाने और धुलाई के इस्तेमाल के और पीने के पानी के कुंओं को अलग रखने, कूड़े-करकट और मल को हटाने तथा भोजन की शुद्धता पर बल देकर, भारतीयों में स्वच्छता संबंधी एक नया अनुशासन पैदा करने की कोशिश की, (ली वॉर्नर 1899 : 137-148)। इसका अर्थ था स्वयं और समाज के प्रति जिम्मेदारी का अहसास और एक प्रशिक्षित देह का नियंत्रण। साम्राज्यवादी विमर्श में, दवाई द्वारा बीमारी पर नियंत्रण और स्वच्छता द्वारा स्वास्थ्य बनाए रखना औपनिवेशितों के लाभ के लिए औपनिवेशिक शासकों द्वारा चलाए गए नैतिक अभियान की दो महान उपलब्धियां थीं (गुहा : 1996)। औपनिवेशिक शासकों द्वारा लाए गए आयुर्विज्ञान के नए ज्ञान की स्वीकार्यता नए नागरिक को देशज से अलग करती थी। इसका अर्थ यह स्वीकार करना भी था कि राज ने देशजों के लाभ के लिए

अस्पतालों का निर्माण किया था। ली वॉर्नर ने नोट किया कि शिक्षा के साथ अस्पतालों की स्वीकार्यता और उनमें विश्वास बढ़ा (ली-वॉर्नर 1899 : 134-35)।

ली वॉर्नर के लिए, ब्रिटिश शासन भारतीयों के लिए एक शिक्षाई अनुभव था। 'शिक्षा' स्कूल तक सीमित नहीं थी। उनके लिए जो पढ़-लिख नहीं सकते थे, यह शिक्षा 'गांवों, नगरों, न्यायालयों और रेलवे' में आरंभ होती थी (वही : viii)। भारत के सार्वजनिक कार्य अंग्रेजों की 'संगठन और संसाधन शक्ति' का सबूत थे और इन कौशलों के प्रशिक्षण के 'बेहतर विद्यालय' (वही : 163)। सार्वजनिक न्याय, डाक और तार संप्रेषण, जेल, सार्वजनिक कार्यालय, संग्रहालय, अस्पताल, प्रेस और विद्यालय, सभी का शिक्षाई महत्त्व था (वही : 165)। ली वॉर्नर का कहना था कि नगर निगम बोर्ड भी शैक्षिक उद्देश्य को ध्यान में रखकर बनाए गए थे। वे 'शिक्षा-सफाई, चिकित्सकीय, परोपकार और स्थानीय सार्वजनिक कार्यों के लिए समर्पित स्थानीय कोष के प्रबंधन में स्थानीय रुचि पैदा करने के लिए' स्थापित किए गए थे और साथ ही, वे राजनैतिक शिक्षा के भी औजार थे (वही : 20)। सत्ता के दुरुपयोग का विरोध कर और सुधार के सुझाव देकर नागरिकों ने सीखा कि उनकी राय और विचारों में एक 'शक्ति' थी और वे 'अधिकार और कर्तव्य के एक नए बोध' को महसूस करने लगे (वही : 22)। नागरीय नियुक्तियों में भारतीय देशजों को नौकरी देकर, ब्रिटिश सरकार 'भारत के लोगों को न्याय, सत्यनिष्ठा और सार्वजनिक कर्तव्य के उन सिद्धांतों के अनुसार अपने मसलों का स्वयं संचालन' सिखा रही थी जो 'यूनाईटेड किंगडम की जनता की राय में आवश्यक हैं' (वही : 43)। ब्रिटिश 'भारतीयों को अराजकता और अव्यवस्था से लड़ना और हराना सिखा सकते थे' (वही : 62)। उन्होंने देशज शासकों को शासन संबंधी सलाह भी दी (वही : 67)। 'अनुशासन, कौशल और संगठन' के जरिए अंग्रेजों ने 'लड़ाकू शक्ति के मापदंड और कुशलता ऊंची उठा दी थी' (वही : 125)। लंदन के लाखों नागरिक जो एक निहत्थे सिपाही के उंगली उठाने पर रुक जाते थे, भारतीयों को कानून और सत्ता के लिए आदर का पाठ पढ़ा सकते थे। लंदन के ये नागरिक 'समझदार' थे क्योंकि वे जानते थे कि 'यह स्वयं उनके हित में था कि वे खुद को सार्वजनिक व्यवस्था के पक्ष में खड़ा करें और लोगों को उसे बनाए रखने में मदद दें' (वही : 127)। ली वॉर्नर ने अपने पाठकों को बताया कि ब्रिटिश कार्यपालिका अधिकारियों का कानून के अधीनस्थ करने में और कानून बनाने तथा पालने के लिए एक अलग संस्था बनाने में प्रथम थे (वही : 38)। यहां भी, वे भारतीयों को शिक्षा दे सकते थे।

औपनिवेशिक शासन की यह शैक्षिक प्रकृति औपनिवेशिक उद्यम को एक वयस्क-बालक संबंध के रूप में संकल्पित करने का परिणाम था जिसे प्रबोधन (एनलाइटनमेंट) और मानव विकास के सिद्धांतों में औचित्य और समर्थन मिला। कांट के अनुसार प्रबोधन ने मनुष्यता को अवयस्कता से बाहर आने और एक तार्किक तथा वयस्क व्यक्ति बनने की संभावना दी। वयस्क तार्किकता पर इस बल ने मानव प्रकृति की विविधता के लिए दरवाजे बंद कर दिए और यूरोपीय समाजों के एक विशिष्ट ऐतिहासिक काल में उपजे इस मूल्य, वयस्क तार्किकता ने, यूरोपीय वयस्कता और उसके बचपने वाले, औपनिवेशित अन्य के बीच एक शैक्षणिक और साम्राज्यवादी पदानुक्रम बना दिया (गांधी 1999 : 32)। उन्नीसवीं शताब्दी में, जैविक वर्गीय श्रेष्ठता के सिद्धांतों और 'सांस्कृतिक मानवशास्त्र' में हुए काम ने मानव विकास के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया था। इन सिद्धांतों के अनुसार आधुनिक सभ्यता की ओर बढ़ती गैर-श्वेत नस्लों की संस्कृति और समुदाय विकास की आरंभिक अवस्था में था। निचली नस्लों के सदस्य होने के कारण, यह सहज था कि श्रेष्ठ श्वेतों के मुकाबले में गैर-श्वेत गरीब और पिछड़े थे। अतः वयस्क 'अभिभावकों' द्वारा गैर-श्वेतों को 'बच्चे-जैसा' मानकर उनसे व्यवहार करना था (हॉब्सबॉन 1992 : 290-312)। अभिभावक या वयस्कों को बच्चे के हित में जो श्रेयस्कर लगे, उसके अनुसार बच्चों को ढालने के लिए 'बच्चों' का व्यवहार और विचार के नए तरीकों में समाजीकरण आवश्यक था। ली वॉर्नर की नागरिक शास्त्र की पाठ्यपुस्तक देशजों को नागरिक बनाने के इस 'विकासात्मक' कार्य एवं प्रशिक्षण में शामिल थी।

देशजों को सरकारी कार्यालयों में नौकरी देकर, विश्वास और जिम्मेदारी से भरे कर्तव्य सौंपकर, भारतीयों को सुधारा गया। नगर निगमों, विधायिकाओं में स्थान देकर और कानून में व्यावसायिक प्रशिक्षण का 'चरित्र का उत्तरदायित्व सिखाने समाज के प्रति कर्तव्य का मान कराने में एक पुनर्बलन असर' था (विश्वनाथन 1990 : 90-91)। साम्राज्यवादी बोध में कानून की अवधारणा मानवीय उपलब्धि की सर्वोच्च परीक्षा थी और जंगली लोगों में व्यवस्था लाने और बनाए रखने के लिए आवश्यक था<sup>10</sup>। कानून का काम विरोधी हितों में सामंजस्य बिठाना और झगड़े निपटाना था। वह किसी व्यवस्थित समाज के लिए अपरिहार्य था और उसने राज को एक 'नैतिक', 'सभ्य' और 'सभ्य बनाने वाले' शासन के बतौर प्रस्तुत किया। इस बात पर बल देकर कि सत्ता के लिए आदर अंग्रेजों का 'राष्ट्रीय चरित्र' था और वे भारत में 'कानून का शासन' लाए थे, ली वॉर्नर ने कानून का पालन करने को नागरिक का आवश्यक गुण-धर्म बना दिया और औपनिवेशिक राज्य को एक प्रगतिशील शक्ति के रूप में चित्रित किया।

औपनिवेशिक विमर्श ने स्थिर विरोधी युग्मों के जरिए स्वयं का औचित्य ठहराया था। 'नस्ल और वृहद् पहचान' पर अपने एक निबंध में एरिक एरिकसन ने समझाया है कि प्रबल संस्कृति अधीनस्थ पर वह सभी गुण एवं चरित्र आरोपित करती है जिनकी स्वयं में उपस्थिति से वह सबसे ज्यादा डर और घृणा महसूस करती है (वॉल्श में उद्धृत 1983 : 7)। हम भारतीयों की इस पूरी तरह नकारात्मक सांस्कृतिक पहचान का बनना ली वॉर्नर द्वारा अंग्रेज/भारतीय लोगों, समाज एवं शासन की व्याख्या में पा सकते हैं। इस उद्देश्य के लिए, ली वॉर्नर की पुस्तक के आधार पर विरोधी युग्मों की एक तालिका बनाई गई है जो औपनिवेशिक विमर्श का हिस्सा थी और जिसमें भिन्नता का विचार केंद्रीय था।

### अंग्रेज

- क) नागरिक
- ख) निजी हित से संचालित
- ग) कहीं भी जाने, बोलने, श्रम एवं व्यापार की स्वतंत्रता
- घ) अध्यापक
- ङ) ज्ञानवान एवं शिक्षित
- च) सभ्य
- छ) कानून का पालन करने वाला
- ज) व्यवस्था
- झ) कार्यकुशल, संगठित/व्यवस्थित
- ञ) मजबूत एवं शक्तिशाली
- ट) रक्षक
- ठ) सत्यनिष्ठ
- ड) आत्मनियंत्रित
- ढ) तार्किक
- ण) खुला, सहिष्णु
- त) जिम्मेदार
- थ) संवेदनशील, चिन्ता करने वाले शासक

### भारतीय

- जाति, संप्रदाय में बंटा
- निजी हित की अनुपस्थिति
- दीवारों में फंसा
- विद्यार्थी
- अज्ञानी और अशिक्षित
- उपद्रवी, बर्बर
- अराजक
- अराजकता एवं अव्यवस्था
- अकुशल, अव्यवस्थित
- कमजोर
- रक्षित
- बेईमान
- मनोभावों में चालित
- अतार्किक एवं भावुक
- पूर्वग्रहित, असहिष्णु
- गैर जिम्मेदार
- उदासीन शासक

भारतीयों पर आरोपित इन नकारात्मक पहचानों ने शिक्षित भारतीयों की स्व-अवधारणा पर असर डाला। इस 'भारतीय' पहचान से बचने का सकारात्मक विकल्प अंग्रेजों की संस्कृति और मूल्यों में समावेश था (वॉल्श 1983 : 9)। शिक्षित भारतीयों ने नागरिक शास्त्र की पाठ्यपुस्तकों से बनी और चित्रित आदर्श नागरिक की अवधारणा, राज्य की संस्था और नागरिक का राज्य से अधीनस्थता का रिश्ता अंगीकार किया। इस शिक्षित अभिजन ने औपनिवेशिक शासकों का आम जनता के प्रति पैतृकवादिता का रवैया अपना

लिया और अपने ऊपर उनके चरित्र को सुधारने, नैतिक रूप से उन्हें ऊंचा उठाने और जनता को ऐसे नागरिक में गढ़ने की जिम्मेदारी ले ली जो साम्राज्यवादी दृष्टि से आदर्श माने जा सकें<sup>11</sup>।

ली वॉर्नर की नागरिक-शास्त्र की पाठ्यपुस्तक ने अपने पाठकों को बतौर एक सक्रिय नागरिक अवलोकन करने, अपने वातावरण पर प्रश्न और चर्चा करने तथा अपने ज्ञान को रोजमर्रा की समस्याओं को सुलझाने का कोई अवसर नहीं दिया। बल्कि उसने देशजों के व्यक्तित्व और भारतीय समाज की कमियों के विमर्श में योगदान दिया। उसने राज्य को देशज के भीतर परिवर्तन लाने वाले और प्रगति के सार्वभौमिक मूल्यों के अनुसार नागरिक समाज रचने वाले कर्ता के रूप में प्रस्तुत किया। एक आदर्श नागरिक और एक आदर्श राजनैतिक राज्य की यह अभिपुष्टि असल में औपनिवेशिक राज्य का समर्थन और स्वीकार्य था। इसने असली और आदर्श राज्य को बांट दिया। विजय, व्यापारिक लाभ कमाने और देशजों के अनुशासनीय प्रबंधन की अपरिष्कृत वास्तविकताओं में लगे औपनिवेशिक राज्य और उसके शासकों को औपनिवेशिक राज्य की ऐसी प्रशंसनीय एवं प्रतिष्ठित छवियों में मिला दिया गया जो देशज के उपकार और रक्षा में लगा था और अपने नागरिकों से निष्ठा की मांग कर सकता था। इस तरह, नागरिक शास्त्र ने औपनिवेशिक राज्य और उसके आर्थिक शोषण पर एक मुखौटा चढ़ाया।

### टिप्पणी

1. देखें फैनन (1963, 1967), मेम्मी (1967), न्गुगी वा थ्योंगो (1994), नन्दी (1999), सईद (1978), कोहन (1996)।
2. देखें गुहा (1963), वॉशब्रुक (1981), इन्डन (1986), सईद (1978), कोहन (1996), प्रेट (1992), चक्रवर्ती (1991)।
3. भारतीय देशजों के लिए शिक्षा की नैतिक भूमिका पहली बार सन् 1811 में लॉर्ड मिंटो (गिल्बर्ट इलियट) द्वारा उल्लिखित हुई। बाद के अन्य वक्तव्यों के लिए देखें 1854 का वुड डिस्पैच (पृ. 5), भारतीय शिक्षा कमीशन (1882 : 28), सार्जेन्ट कमेटी रपट (1944 : 2)।
4. इंसानों और उनके बीच की भिन्नताओं को नस्ली अंदाज में देखने में पश्चिमी विज्ञान की भूमिका के लिए देखें स्टेपान (1982) और गोल्ड (1996)। गणित के विकास के साम्राज्यवादी योजना से रिश्ते के लिए देखें विशप (1990)। अंग्रेजी साहित्य में औपनिवेशिक संपर्क और प्रभुता का इंग्लैंड के सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व रचने, पहचान, रिश्तों और भारत में अंग्रेजी साहित्यिक अध्ययन की भूमिका एवं इतिहास पर स्पाइवाक (1998), लूम्बा (1999 : 72) एवं विश्वनाथन (1990) उपयोगी हैं। मानचित्र कला किस तरह से नई जगहों की यात्रा और औपनिवेशिक उद्यमों से जुड़ी थी इसकी चर्चा हार्ले (1998), रयान (1994)

और रबासा (1985) ने की है। मानवशास्त्र का मूल देशज औपनिवेशिक संस्कृतियों को समझने की कोशिशों में है और उसके यूरोपीय ज्ञान संसार के सिद्धांतों में रचे-बसे होने तथा नृशंस औपनिवेशिक आचरणों को सही ठहराने में इसके इस्तेमाल पर कोहन (1996 : 11), हल्मे (1986) और माइल्स (1989 : 25) उपयोगी हैं।

5. न केवल भारतीय बल्कि उनका साहित्य भी शुद्ध विश्वास, इतिहास के रूप में प्रस्तुत मिथकों के रूप में आलोचना का शिकार हुआ, जबकि यूरोपीय अनुशासनों को मानवीय तर्क का परिणाम करार दिया गया (देखें मैकॉले का शिक्षा पर नोट, पृ. 3)। इस संदर्भ में विस्तृत चर्चा के लिए देखें विश्वनाथन (1990 : 99-144)।
6. 1857 के विद्रोह से पहले और बाद ब्रिटिश शासन के खिलाफ अनेक आदिवासी और किसान आंदोलन हुए। इनकी विस्तृत व्याख्या के लिए देखें देसाई (1979), गुहा (1983) और अयोध्या सिंह (1994)।
7. थॉमस कारलाइल, जॉन रस्किन, बेंजामिन डिजराइली ने साम्राज्य की संवेदनशीलता के भावुक, रोमानी विचार विकसित किए। कर्जन (1908 : 151-165) ने भी साम्राज्यवाद के उच्च समर्पण पर बल दिया।
8. वेम्बले में 1924-25 में हुई साम्राज्य प्रदर्शनी एवं अन्य साम्राज्य प्रदर्शनियों, किशोरों के लिए हेन्टी की लिखी कहानियों ने इन रुढ़िबद्ध पूर्वाग्रहों को जन्म दिया और पक्का किया (देखें चक्रवर्ती 1991 : 3-4)।
9. मैकॉले द्वारा उपनिवेशवाद के एक विकास परियोजना और औपनिवेशिक शासकों की एक शिक्षक की भूमिका के भारतीयों के लिए उचित शिक्षा के विचार और उस पर चर्चा के लिए देखें विश्वनाथन (1990 : 16-17)
10. रुडयार्ड किपलिंग की अनेक रचनाओं में कानून का उल्लेख मिलता है। उदाहरण के लिए देखें, 'हाउ फीअर केम', पृ. 19 और 'द लॉ ऑफ द जंगल' (पृ. 21-22), सैकंड जंगल बुक, लंदन 1981 में।
11. शिक्षित भारतीयों की आम जनता के प्रति इस आत्म-उत्तरदायित्व के उदाहरणों के लिए देखें कुमार (1991 : 37-41)। चटर्जी (1996) ने भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं के पैतृकवादी रवैये की चर्चा की है। ◆

### संदर्भ

- अरब्लास्टर, ऐंथनी (1987) द राइज एंड डेक्लाइन ऑफ वेस्टर्न लिबरलिज्म, ऑक्सफोर्ड : बेसिल ब्लैकवेल।
- बासु, ए.एन. (संपा.)(1952) इंडियन एज्युकेशन इन पार्लियामेंट्री

पेपरस, बोम्बे : एशिया।

- बेरनॉल, मार्टिन (1987) ब्लेक एथेना : द एफ्रो एशियाटिक रूट्स ऑफ क्लासिकल सिविलाइजेशन, न्यू ब्रुनस्विक, एन.जे. : रुटग्रेस यूनिवर्सिटी प्रेस।
- बिशॉप ए.जे. (1990) 'वेस्टर्न मैथमेटिक्स : द सीक्रेट वेपन ऑफ कल्चरल इम्पीरियलिज्म, इन रेस एण्ड क्लास 32 : 51-56
- कॉर्नोय, मार्टिन (1974) एज्युकेशन एज कल्चरल इम्पीरियलिज्म, न्यूयार्क : रेविड मक्येक।
- चक्रवर्ती, सुबाश (1991), द राज सिंड्रोम, दिल्ली : पेंग्विन
- चटर्जी, पार्थ (1996) द नेशनलिस्ट थॉट एण्ड द कॉलोनियल वर्ल्ड, दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- चटर्जी, पार्थ (1999) द नेशन एण्ड इट्स फ्रेग्मेंट्स, नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस।
- कोहन, बर्नार्ड (1996) कॉलोनियलिज्म एण्ड इट्स फॉर्मस् ऑफ नॉलेज, द ब्रिटिश इन इण्डिया, प्रिंस्टन : प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- कर्जन, जी.एन. (1908) 'द टू इम्पीरियलिज्म' जनवरी, 19वीं सदी।
- देसाई, ए.आर. (1979) (संपा.) पीजेंट स्ट्रगलस् इन इण्डिया, बॉम्बे।
- एलिट, चार्ल्स अल्फर्ड (1982) लेबोरियर डेज, लीवस् फ्रॉम द इण्डियन रिकॉर्ड ऑफ सर चार्ल्स अल्फर्ड एलियट, कलकत्ता।
- फेनन, फ्रेंज (1963)। द रेचूड ऑफ द अर्थ, अनुवाद सी.एल. मार्कमेन। न्यू यार्क : ग्राव प्रेस।
- फेनन, फ्रेज (1967)। ब्लेक स्किन, व्हाइट मास्क्स, अनुवाद सी.एल. मार्कमेन। न्यू यार्क : ग्राव प्रेस।
- फ्रेरे, पाउलो (1990) पेडागोगी ऑफ द ऑप्रेसिड, लंदन : पेंग्विन
- गोल्ड, एस.जे. (1996) द मिसमेजर ऑफ मैन, न्यू यार्क : नॉर्टन
- गुहा, रनजीत (1963)। ए रूल ऑफ प्रोपर्टी फोर बंगाल : एन इजी ऑन द आइडिया ऑफ द परमानेंट सेटलमेंट, पेरिस।
- (1996) 'द स्माल वॉइस आफ हिस्ट्री' इन शाहीद आमिन, दिपेश चक्रवर्ती (संपा.) सब-अल्टर्न स्टेडीज, वोल्यूम 9, दिल्ली : ओयूपी।
- हार्ले बी. (1988) 'मैपस, नॉलेज एण्ड पॉवर' इन डी.कोसग्रोव एण्ड एस. डेनिल्स (संपा.), द इकॉनोग्राफी आफ लैंडस्केप, केंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 277-312
- होस्बॉन, इ.जे. (1992) द एज ऑफ कैपिटल 1848-1875, दिल्ली : रूपा एण्ड कम्पनी।
- हल्मे, पी. (1985) 'पॉलीट्रोपिमेन : टूप्स ऑफ सैक्सुअलिटी एण्ड मोबिलिटी इन अर्लियर कॉलोनियल डिस्कॉर्स इन एफ. बार्कर, पी. हुल्मे, एम. लवर्सेन एण्ड डी. लॉक्सटी (संपा.) यूरोप एण्ड इट अदर्स, वॉल्यूम-2, कोल्चेस्टर : यूनिवर्सिटी ऑफ एसेक्स प्रेस, पृ.17-32

- हटकिन्स, एफ.जी. (1967) द इल्यूज्ज ऑफ परमानेंस, प्रिंस्टन: प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस
- इडेन, रोनाल्ड (1986) ऑरियंटलिस्ट कंस्ट्रक्शन ऑफ इण्डिया, मॉडर्न एशियन स्टेडीज 20(3)। इण्डियन एज्युकेशन कमीशन रिपोर्ट (1882), कलकत्ता।
- जैन, मनीष (1999) एलिमेंट्री स्कूल सिविल्स आफ्टर इंडिपेंडेंस : ए कनटेंट एनालिसिस ऑफ टेक्सबुक्स, अप्रकाशित एम.एड. डिसेटेशन, दिल्ली : डिपार्टमेंट ऑफ एज्युकेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली।
- कालिया, एन.एन. (1986) प्रोम, सेक्सिज्म टू इक्वेलिटी, दिल्ली : न्यू इण्डिया पब्लिकेशनस्।
- किप्लिंग, रुडयार्ड (1899) 'द व्हाइट मेन्स बडेन' इन मेक्लेयरस मेग्जीन, xii फरवरी
- कुमार, कृष्ण (1991) पॉलिटिकल एजेण्डा ऑफ एज्युकेशन नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशन।
- लूम्बा, एनिया (1999) कॉलोनियलिज्म/पोस्ट कॉलोनियलिज्म, लंदन : रूटलेज।
- मेक्फर्सन, सी.बी. (1977) पॉलिटिकल थ्योरी ऑफ पोसेसिव इंडिविज्युलिज्म, लंदन : ओयूपी
- मदान, अमन (1995) नागरिक शास्त्र की पुस्तकों में नागरिकों की छवि, शिक्षक संदर्भ, नं.-5, मई-जून, होशंगाबाद : एकलव्य पृ.-88-92
- मेम्मी, ए. (1967)। द कॉलोनाइजर एण्ड द कॉलोनाइज्ड, एम.ए. : बेकॉन प्रेस।
- मेम्मी, ए. (1968)। डोमीनेटेड मैन : नोट टुवर्ड ए पोर्ट्रेट। लंदन : ऑरियन प्रेस।
- मेटकॉल्फ, थॉमस आर. (1995) आइडियोलॉजी ऑफ द राज, दिल्ली : फाउण्डेशन बुक्स।  
माइल्स, आर. (198) रेसिज्म, लंदन : रूटलेज।
- मुरडॉक, जॉन (1881) एज्युकेशन इन इण्डिया, ए लेटर टू हिज एक्सीलेंसी, द मार्क्यूज ऑफ रिपन, गवर्नर जनरल ऑफ इण्डिया, मद्रास : सीकेएस प्रेस
- मुरडॉक, जॉन (1900) इण्डियन एज्युकेशन रिफॉर्म, ए लेटर टू द राइट ऑनरेबल लार्ड कर्जन, मद्रास : एम.ई. पब्लिशिंग हाउस
- प्रेट, एम.एल. (1992)। इम्पीरियल आईज : ट्रेवल राईटिंग एण्ड ट्रान्सकल्चरेशन, लंदन : रूटलेज
- रेब्स, जे. (1985) 'एलगोरिस ऑफ द एटलस' इन एफ. बार्कर, पी. हुल्मे, एम.लवर्सन एण्ड डी. लोकसली (संपा.), यूरोपियन एण्ड इट्स अदर, वॉल्यूम-2, कॉल्वेस्टर : यूनिवर्सिटी ऑफ एसेक्स प्रेस, पृ. 1-16
- रिपोर्ट ऑफ द सैकण्डरी एज्युकेशन कमीशन (1952) दिल्ली : भारत सरकार।
- रयान, एस. (1994) 'इस्क्रीबिंग द एम्पटिनेस, कार्टोग्राफी, एक्सप्लोरेशन एण्ड द कंस्ट्रक्शन ऑफ ऑस्ट्रेलिया', इन सी.टिफिन एण्ड ए.लॉशन (संपा.)। डेस्क्राइबिंग एम्पायर, पोस्ट कॉलोनियलिज्म एण्ड टेक्सचुअलिटी, लंदन एण्ड न्यू यार्क : रूटलेज, पृ. 115-130
- सर्द, इ.डब्ल्यू. (1978), ऑरियंटलिज्म, लंदन : रूटलेज एण्ड केगन पॉल।
- सिंह, अयोध्या (1994) भारत का मुक्ति संग्राम, दिल्ली।
- सिंह, ज्योत्सना जी. (1996) कॉलोनियल नर्रेटिव्स/कल्चरल डाइलॉग, 'डिस्कवरीज ऑफ इण्डिया इन द लैंग्वेज ऑफ कॉलोनियलिज्म, लंदन : रूटलेज।
- सिंह, के.एस. (1977) 'कॉलोनियल ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ द ट्राइबल सोसाइटी इन मिडिल इण्डिया' इन प्रोसेडिंग ऑफ द इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस 1977
- स्पीवाक, जी.सी. (1985) 'देयर वूमन टेक्टस् एण्ड ए क्रिटिक ऑफ इम्पीरियलिज्म, क्रिटिकल इन्क्वायरी 12 (1); पृ.243-261
- श्रीवास्तव, संजय (1993) सिटीजन एण्ड अदर : पोस्ट कॉलोनियलिटी एण्ड नेशनल आइडेंटिटी एट एन इण्डियन पब्लिक स्कूल, पी.एच. डी. थीसिस, यूनिवर्सिटी आफ सिडनी : डिपार्टमेंट आफ एन्थ्रोपोलॉजी, फैकल्टी आफ आर्ट्स।
- स्टेपन, एन.एल. (1982) द आइडिया आफ इन साइंस, ग्रेट ब्रिटेन 1800-1960, लंदन : मैक्मिलन।
- स्ट्रेटची, जॉन (1888) इण्डिया, लंदन : केगन पॉल।
- तलवार, वीना ओल्डनबर्ग (1984) द मैकिंग ऑफ कॉलोनियल लखनऊ 1856-1877, प्रिंसटन, न्यू जर्सी : प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- थ्योंगो, न्गुगी वा (1994) भाषा, संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता, (संपादन और अनुवाद) आनन्दस्वरूप वर्मा, दिल्ली : सारांश।
- विश्वनाथन, गौरी (1990) माक्स ऑफ कॉनक्वेस्ट : लिटरेसी स्टेडी एण्ड ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, लंदन : फेबर एण्ड फेबर
- वॉर्नर, ली (1899) द सिटीजन ऑफ इण्डिया, लंदन : मैक्मिलन
- वॉल्स, जुडिथ (1983) ग्राइंग अप इन ब्रिटिश इण्डिया, न्यू यार्क : हॉल्मस एण्ड मेरि।
- वॉशब्रुक, डेविड (1981) 'लॉ स्टेट एण्ड एग्नेरियन सोसाइटी इन कॉलोनियल इण्डिया', इन मॉडर्न एशियन स्टेडीज, 15 (3)।  
वेइनेर, मार्टिन जे. (1981) इंग्लिश कल्चर एण्ड द डिक्लाइन ऑफ द इंडस्ट्रीयल स्पिरिट 1850-1980, लंदन।